P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-9* May- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में सामाजिक सरोकार

नरेश कुमार वर्मा
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
टोंक, राजस्थान

सारांश

व्यंग्य लेखन व्यंग्यकार की मनुष्य और समाज के प्रति स्पष्ट प्रतिबद्धता को प्रकट करता है। यह ऐसा सकारात्मक एवं गंभीर लेखन है जो सामाजिक विसंगतियों का उद्घाटन कर वर्तमान से असंतोष तथा बेहतर भविष्य की मानसिकता बनाता है। अपने समकालीन परिवेश के प्रति सजगता एवं चौकन्नेपन से व्यंग्यकार व्यवस्था या समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रुपताओं और अराजक स्थितियों को उजागर करते हुए उनमें सुधार एवं परिवर्तन की आकांक्षा व्यक्त करता है। समकालीन व्यंग्य के प्रमुख हस्ताक्षर गोपाल चतुर्वेदी भी अपने व्यंग्य लेखों में हमारे दैनंदिन जीवन से जुड़े प्रसंगों, घटनाओं और परस्पर व्यवहार के दोगले तौर–तरीकों का खुलासा मध्यवर्गीय संदर्भों में करते हैं। इनके व्यंग्यों में मौजूद सामाजिक सरोकार हमें मनुष्यता, न्याय और सटीकता का पाठ पढ़ाकर अपने परिवेश के प्रति सजग बनाते हैं।

मुख्य शब्द : सामाजिक विसंगतियां, बाजारू संस्कृति, लुप्त मानवीय संवेदना, बदलता समय/आदर्श/मानसिकता/दृष्टिकोण, आत्ममुग्धता, विभाजित मानव, रिश्ते, सरोकार, सिमटता दायरा।

प्रस्तावना

प्रत्येक साहित्यिक रचना किसी न किसी विचार से प्रेरित रहती है। व्यंग्य का यह प्राण तत्व है। व्यंग्य मुख्यतः ऐसा बौद्धिक कर्म है जो सामाजिक अभिप्रायः से युक्त होता है। किसी भी भाषा के साहित्य में यदि हम सामाजिक चेतना के स्पष्ट दर्शन करना चाहें तो वह हमें उसकी व्यंग्य रचनाओं में मिलेगी। समाज की तात्कालिक स्थितियों एवं परिस्थितियों का जैसा स्पष्ट वर्णन व्यंग्य रचनाओं में मिल सकेगा, वैसा अन्य विधाओं में नहीं। व्यंग्य की चेतना का संबंध सामाजिक व्यवहार और वस्तु के प्रति रचनाकार की संवेदनशील और विचारपूर्ण प्रतिक्रिया से है।

वस्तुतः विचार रचना के गहन स्तरों पर घटित होता है किन्तु जरूरी तौर पर विचार अन्ततः रचनाकार के मानवीय पक्ष और संवेदनशील प्रतिबद्धता में निहित है। रचनाकार अपनी प्रगतिशील आस्था, विचार और सपनों में यथार्थ और उसके द्वन्द्वो एवं अन्तर्विरोधों को ढालता है और इस तरह सामाजिक यथार्थ को सृजनात्मक आलोक से भर देता है।

व्यंग्य लेखन के लिए लेखक की मनुष्य और समाज के प्रति स्पष्ट प्रतिबद्धता जरूरी है, उसके बिना हास्य लिखा जा सकता है व्यंग्य नहीं। प्रख्यात व्यंग्यकार **हरिशंकर परसाई** के शब्दों में,'व्यंग्य सामाजिक विसंगतियों का उद्घाटन कर वर्तमान से असंतोष तथा बेहतर भविष्य की मानसिकता बनाता है। व्यंग्य कुण्ठा नहीं है और न ही नकारात्मक है अपितु यह एक गंभीर सकारात्मक लेखन है। यह जीवन से साक्षात्कार कर उसकी आलोचना करता है। विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का परदाफाश करता है। जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है जितनी गंभीर रचनाकार की। उत्तम व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण होता है।'[1]

अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन का उद्देश्य गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य लेखों के माध्यम से समकालीन व्यवस्था में मौजूद विसंगतियों, विद्रूपताओं, अन्याय, मूल्यहीनता एवं विषमताओं को अनावृत्त करते हुए जनचेतना द्वारा बेहतर व्यवस्था की आकांक्षा को पोषित करना है। वर्तमान समय में जबकि सामाजिक सरोकारों का दायरा सिमटता जा रहा है और रिश्तों में बुनियादी परिवर्तन हो रहे हैं, ऐसे विषम समय में जनमानस को नैतिकता, जीवन मूल्यों की शिक्षा देते हुए मनुष्यता, न्याय और सटीकता के पक्षधर बने रहने के लिए प्रोत्साहित करना है।

अध्ययनकाल

इस शोध अध्ययन में स्वातंत्र्योत्तर भारत की विशेषकर अस्सी के दशक से लेकर वर्तमान समय तक की कालावधि में घटने वाले विभिन्न राजनीतिक,

सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक घटनाक्रमों के संदर्भों में उजागर विविध विसंगतियों और उनके सामाजिक सरोकारों का विश्लेषण किया गया है।

साहित्यावलोकन

सामाजिक सरोकारों पर आधारित विभिन्न लेखकों एवं कवियों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर कई शोधकार्य हुए हैं। जिनमें कतिपय साहित्य ने अपनी सीमाओं के साथ शोधकर्ता का ध्यान आकर्षित किया है जो निम्नलिखित प्रकार से है–

कांत, विभूति (2000 ई.) – 'समकालीन हिन्दी कहानी में मूल्यशोध' इस अध्ययन में विगत दो दशकों के संदर्भ में हिन्दी कहानी परंपरा में समकालीन मूल्य शोध पर चर्चा की गई है।

रत्नू, मंजूला (2001 ई.) –'समकालीन हिन्दी कहानियों की सामाजिक अन्तर्वस्तुः कथ्य एवं मूल्यांकन' इस अध्ययन में समकालीन हिन्दी कहानियों में वर्णित सामाजिक सरोकारों पर प्रकाश डाला गया है।

गौड़, पंकज कुमार (2003 ई.) 'साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में व्यंग्य विमर्श और मूल्यांकन' इस अध्ययन में साठोत्तरी उपन्यासों में व्यंग्य की अन्तर्गर्भता तथा उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

मिश्रा, सीमा (2003 ई.) 'नासिरा शर्मा के साहित्य में समाज और संस्कृति का यथार्थ' इस अध्ययन में नासिरा शर्मा के साहित्य में वर्णित समाज तथा संस्कृति के यथार्थपरक स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

सहरिया, अजीतसिंह (2004 ई.) – 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में धार्मिक विसंगतियाँ' इस अध्ययन में 1960 ई. से 1980 ई. तक की कहानियों में व्यक्त धार्मिक विसंगतियों को प्रकट किया गया है।

शर्मा, विष्णुदत्त (2007 ई.) –'रघुवीर सहाय के रचना संसार में सामाजिक चेतना एवं प्रासंगिकता' इस अध्ययन में रघुवीर सहाय की रचनाओ में व्यक्त सामाजिक चेतना एवं उनकी प्रासंगिकता को अभिव्यक्ति दी गई है।

गुप्ता, मिथिलेश (2009 ई.) – 'डॉ. रांगेय राघव की कहानियों में चित्रित जीवन सरोकारों का यथार्थगत अध्ययन' इस अध्ययन में रांगेय राघव की कहानियों में व्यक्त सामाजिक सरोकारों का यथार्थगत अध्ययन किया गया है। उपर्युक्त शोध साहित्य में सामाजिक सरोकारों एवं उसके विभिन्न आयामों को प्रकट करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में भी गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्य लेखों में अभिव्यक्त सामाजिक सरोकारों के विविध आयामों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

इस अध्ययन हेतु गोपाल चतुर्वेदी के विपुल व्यंग्य साहित्य में से उनके प्रमुख व्यंग्य संग्रह – अफसर की मौत (1985 ई.), दुम की वापसी (1987 ई.), खंभों के खेल (1990 ई.), फाईल पढ़ि–पढ़ि (1991 ई.), दाँत में फँसी कुरसी (1996 ई.), गंगा से गटर तक (1997 ई.), रामझरोखा बैठ के (2001 ई.), नैतिकता की लंगड़ी दौड़ (2002 ई.), भारत और भैंस (2003 ई.), धांधलेश्वर (2008 ई.), आदमी और गिद्ध (2010 ई.), फॉर्म हाऊस के लोग (2011 ई.), निर्लज्ज समय के आस–पास (2012ई.), दूध का धूला लोकतंत्र (2013 ई.), सत्तापुर के नकटे (2014 ई), आदि का अध्ययन किया गया है।

सहायक सन्दर्भ ग्रंथों के रूप में सुरेषकांत की 'हिन्दी गद्य में व्यंग्य और विचार,' सुभाष चंदर की 'हिन्दी व्यंग्य का इतिहास', रामचंद्र तिवारी की 'हिन्दी का गद्य साहित्य', डॉ. शशि मिश्र की 'स्वायतंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध', डॉ. वीरेन्द्र मेहन्दीरत्ता की 'आधुनिक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य', डॉ. श्याम सुन्दर घोष की 'व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों?' सहित अनेक शोधपरक ग्रंथों का अध्ययन किया गया है।

गोपाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व और कृतित्व

हिन्दी के समकालीन व्यंग्यकारों की सशक्त और सक्रिय पीढ़ी के प्रतिनिधि व्यंग्यकार गोपाल चतुर्वेदी विगत तीन दशकों से लगातार व्यंग्य लेखन से जुड़े रहकर लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। अपने पहले व्यंग्य संग्रह 'अफसर की मौत' (1985 ई.) के प्रकाशन से प्रारंभ हुई उनकी व्यंग्य यात्रा अद्यतन रचना 'सत्तापुर के नकटे' (2014 ई.) तक अनवरत् रूप से जारी है। इनके अब तक दो काव्य संग्रह 'कुछ तो हो' और 'धूप की तलाश' के साथ ही इक्कीस व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अपने परिवेष के प्रति सजगता एवं चौकन्नेपन के कारण इनके व्यंग्यों में समकालीन व्यवस्था की विसंगतियों, विद्रुपताओं एवं अराजक स्थितियों की सूक्ष्म पकड़ दिखाई देती है। इनकी लेखन यात्रा इन्हें बराबर मानवीय बने रहने और मनुष्यता, न्याय, सटीकता के प्रबल पक्षधर के रूप में प्रस्तुत करती है।

गोपाल चतुर्वेदी व्यंग्यांकन के लिए जिन विषयों का चुनाव करते हैं, वे हमारे दैनिक जीवन से जुड़े प्रसंगों, हमारे आस–पास के जीते–जागते संघर्षरत चरित्रों, जुगाड़ और धाँधागरदी करते व्यक्तियों, हमारे आस–पास घटने वाली दारूण और करूण घटनाओं और परस्पर व्यवहार में आने वाले दोगले तौर–तरीकों का खुलासा करने वाले होते हैं। इनके व्यंग्यों में समसामयिक जीवन की घटनाओं को मध्यवर्गीय संदर्भों में उभारा गया है। शब्दों और विसंगतियों के बीच तालमेल बिठाकर स्थितियों से खेलते हुए चतुर्वेदी समाज के चप्पे–चप्पे में व्याप्त जहालत को सहज, सुकुमार अंदाज में व्यक्त कर देते हैं।

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में अभिव्यक्त सामाजिक सरोकार

गोपाल चतुर्वेदी के व्यंग्यों में विभिन्न सामाजिक विसंगतियों का चित्रण किया गया है जो निम्नलिखित प्रकार से हैं–

बाजार की उल्लू संस्कृति

आधुनिक युग में तेजी से फैल रही बाजार की उल्लू संस्कृति का अपने **''उल्लू–संस्कृति'** व्यंग्य लेख में जिक्र करते हुए चतुर्वेदी लिखते हैं कि 'उल्लू–संस्कृति' में बाजार ने एक नया आयाम जोड़ा है। बाजार का प्रचार के माध्यम से उल्लू बनाने का वादा है। उसे उल्लुओं को अपना माल बेचना है। इसे बाजार का कमाल ही कहेंगे कि उसने माँ के प्रेम को हॉल में एक दिवसीय नाटक में तब्दील कर दिया है। बाजार का संदेश है कि स्नेह का दायित्व भारी है। इससे छुट्टी पाने का एक ही तरीका है। हमारा कार्ड और गिफ्ट 'मदर' को भेंट करो और

उनकी दुआएं पाओ। बस साल में एक दिन की जहमत है, फिर आराम ही आराम है।'[2]

छवि के छलावे का युग

गोपाल चतुर्वेदी के अनुसार 'आधुनिक युग छवि के छलावे का युग है। पैकेजिंग का जमाना है। इंसान हो या सामान अच्छी पैकेजिंग के बिना कुछ हासिल नहीं है। सड़क हो या संसद लोग बढ़िया पैकिंग में मिलते हैं। कुछ को कपड़ों की पैकिंग पसंद है, कुछ को आदर्शों की। आदमी की बाहरी पैकिंग के अन्दर क्या है? कोई नहीं जानता। इस आवरण के भीतर कई बार खौफनाक अपराधी छिपे रहते हैं, कई बार स्वार्थ के सौदागर।'[3]

लुप्त होती मानवीय संवेदना

गोपाल चतुर्वेदी का मानना है कि 'भारत अब दिल, भावना और संवेदना का नहीं ; बुद्धि, मनन, चिंतन, और विश्लेषण का देश है। मरने वाला मर रहा है तो मरे, लोग दिमागी ऐय्याशी से क्यों चूकें। खाओ–पीओ और मौज करो के जीवन–दर्शन में संवेदना सिर्फ दिखाने का हाथी–दाँत है। उसे अगर सिर्फ दिखाइए तो बड़प्पन की द्योतक है, बचाइये तो दौलत है और लुटाइये तो दुःख की जनक है।[4] गाँव हो या शहर दूसरों का दुःख दर्द अपना समझने वाली मानवीय संवेदना पहले कभी रही होगी, आज का इंसान सिर्फ तमाशबीन है। सहानुभूति का शाब्दिक नाटक सभ्य समाज की मान्य परिपाटी है। संवेदना कैसे हो? सबकी निजी समस्याएँ द्रौपदी के चीर–सी है। बमुश्किल एक का हल निकले तो दस आकर घेरें। घरों में मुँह लटकाए बैठे लोग, बाहर निकले नहीं कि चेहरे पर एक कृत्रिम मशीनी मुस्कान चस्पां कर लेते हैं।'[5]

दहेज की सनातन समस्या

दहेज की सनातन समस्या पर प्रहार करते हुए चतुर्वेदी कहते हैं कि 'इक्कीसवीं सदी जो है सिर्फ खरीद–फरोख्त की सदी है। आज क्या है जो बिकाऊ नहीं है? अस्मत, इज्जत, मुल्क, जीवन–मूल्य, पार्टी, वोट, उम्मीदवारी का टिकट। इसमें ताज्जुब क्या है कि दूल्हे का भी मोल है। वह भी इंसान न होकर सिर्फ बिकाऊ माल है।[6] लड़की चाहे कितनी ही योग्य और कुशल हो, भले ही पति से बेहतर नौकरी में हो, पर वर को तो बिकना ही बिकना है। दहेज लेने वाले की आंखो में लेते वक्त चमक तो रहती है, पर नैतिकता की द्रौपदी का चीर–हरण उन्हे नजर नहीं आता है। हम रोज अपने दहेज–याफ्ता साथियों से मिलते हैं। एक तो शान से बताते हैं कि उनका कितना मोल लगा। कहते हैं कि 'जब सचिन जैसी हस्तियों की आई.पी.एल. में बोली लगती है तो उन्हें अपनी बिक्री पर फर्क न हो।'[7]

दांपत्य अविश्वास और छल

वर्तमान समय में दांपत्य जीवन में आए अविश्वास और छल को इंगित करते हुए गोपाल चतुर्वेदी **'गांधारी की पट्टी'** व्यंग्य में कहते हैं कि 'अक्सर कामयाब और बड़े लोग अपनी पत्नी से अलग हो जाते हैं या अगर उन्होंने उसे झेलते रहने की इनायत की तो छुट्टे सांड की तरह इधर–उधर मुँह मारते हैं। वर्तमान में हर पुरुष खुद को कृष्ण और दुनियाभर को धृतराष्ट्र समझता है। यही हाल महिलाओं का है। उनके अपने अलावा सब सुविधा की पट्टी बाँधे गांधारी है। रिश्ते–नाते, परिवार, संबंध ब्याह–शादी अब अतीत के दकियानूसी ढकोसले हैं। आज के अत्याधुनिक युग में संबंध सुविधा का पर्याय है। प्यार शारीरिक सुख की अनवरत् तलाश का दूसरा नाम है।'[8]

हक–वसूली की इक्कीसवीं सदी

चतुर्वेदी मानते हैं कि 'इक्कीसवीं सदी हक–वसूली की सदी है। डॉक्टर, शिक्षक, वकील, शिक्षाविद्, नेता, छात्र, दादा–माफिया, बाबू, पत्नी, बच्चे अपने हकों के बारे में सिर्फ सजग ही नहीं है अपितु उन्हें छीन कर लेने का माद्दा भी रखते हैं। अपने माता–पिता के प्रति बहरापन नई पीढ़ी की जन्मजात सिफत है। आजकल हर आदमी एक–दूसरे को उल्लू बनाने में जुटा है। चाहे नेता हो या विक्रेता। हम कम पैसे देकर ज्यादा हासिल करना चाहते हैं, वह ज्यादा लेकर कम देना चाहता है।'[9]

सफलता का आधुनिक दृष्टिकोण

चतुर्वेदी के अनुसार, 'इक्कीसवीं सदी में सफलता और सुख उन्हीं के लिए संभव है जो तन और मन से स्वार्थ सिद्धि को समर्पित है। जमाना नंगई का है। जो जितना नंगा है, उसका उतना ही पंगा है। यदि आपको इक्कीसवीं सदी में चलना है तो घिसी–पीटी, पलायनवादी सैद्धान्तिक मान्यताओं को ताक पर रख सफलता का आधुनिक दृष्टिकोण अपनाईए। आप यह मानकर चलिए कि जो सफल है, वह सही है। तुलसीदास के राम की नैतिकता से हम लोग जिंदगी भर गुरबत के बनवास में पड़े रहेंगे।'[10]

मेहमान–मेजबान की बदली मानसिकता

गोपाल चतुर्वेदी की मान्यता है कि अतिथि देवो भवः की परंपरा वाले भारत देश में अब मेहमान मेजबान की मानसिकता में तेजी से बदलाव आ रहा है। इस बदलाव को **'पर्यटन के छोटे बड़े ठग'** व्यंग्य में उल्लेखित करते हुए कहते हैं ''उन्होंने मेहमान को भगवान मानने की परंपरा में परिवर्तन तो नहीं किया परन्तु सुधार अवश्य किया है। वह मेहमान को श्रृद्धा और भक्ति देते हैं। इसके बदले उसे भी तो कुछ देना चाहिए। अगर वह उदार है तो खुद–बखुद दे देगा, अगर कंजूस है तो उससे झटकना हमारा धर्म है।'[11] इसी मानसिकता को **'फार्म हाऊस के लोग'** व्यंग्य में भी उजागर करते हुए लिखते हैं 'इवेंट परफेक्ट वाले मेहमान–मेजबान की मानसिकता भी समझते हैं न मेहमान स्नेह की भूख के कारण आते हैं, न मेजबान उन्हें स्नेह की खातिर बुलाते हैं। दोनों का आना–बुलाना सिर्फ अपने–अपने स्वार्थ के लिए होता है। बुलाने वाला चांदी का जूता मारने के लिए आने वाले को आमंत्रित करता है और वह इस जूते के मजे लेने के लिए आते हैं।'[12]

सभ्य समाज का सुविधाजनक सच

'सच्चाई से मुंह मोड़ना आज का पुरूषार्थ है। सभ्य समाज के नियम कायदे इंसान को सिर्फ सुविधाजनक सच की इजाजत देते हैं। ईमान–उसूल के दांत तो सबके झर चुके हैं। निजी–जीवन में हम सच्चाई कभी–कभार कबूल कर लेते हैं। लेकिन सार्वजनिक रूप से सच स्वीकार करने में हमें सख्त परहेज है। झूठ सफल

सामाजिक व्यवहार की अनिवार्य शर्त है। इतना अभ्यास है सबको इसका कि बोलते समय शिकन तक नहीं पड़ती है चेहरे पर।'[13]

टेलीफोन मोबाईल का बढ़ता व्यसन

गोपाल चतुर्वेदी ने **'टेलीफोन का दर्द'** व्यंग्य के जरिये वर्तमान में टेलीफोन / मोबाईल के अति प्रयोग की ओर इंगित करते हुए लिखा है 'जेब से झांकता या गले से लटकता मोबाईल आधुनिक इंसान की पहचान है। पेट भरने को अन्न हो न हो फोन हर हाल में होना ही होना। टेलीफोन के 'लतियल' इसका इतना प्रयोग करते हैं जैसे मां की कोख से दूरभाष यंत्र लेकर जन्मे हो। आजकल इंटरनेट का युग है। सब अपने–अपने स्वनिर्मित 'नैट' में कैद हैं। ऐसा लगता है कि शहरी बच्चे ट्यूबलाइट, सैलफोन और इंटरनेट लेके पैदा हुए हैं। कभी–कभी हमें लगता है कि आधुनिक समय के मोबाइल युग ने बच्चों से बचपन और किशोरों से भोलापन छीन लिया है।'[14]

समय के साथ बदलते मानवीय आदर्श

गोपाल चतुर्वेदी ने वर्तमान दौर में बदलते मानवीय आदर्शों पर प्रहार करते हुए **चूहों की शरारत** व्यंग्य में लिखते हैं कि 'एक जमाना था कि आदमी के आदर्श आदमी होते थे। वक्त की तरक्की के साथ उसके आदर्श जानवर हो गए हैं। आज आदमी साँप, सियार, गिरगिट, लोमड़ी, चूहे आदि से ज्यादा प्रभावित है। मन, कर्म, वचन से वह उनका अनुकरण करता है।'[15] इसी संदर्भ में चतुर्वेदी 'चुनाव के बाद' व्यंग्य में लिखते हैं कि आज के समाज का सर्वप्रिय आदर्श हाथी है वर्ना क्यों सब उसके अनुकरण में जुटते हैं। दिखाने को शराफत और परमार्थ के दाँत और खाने को सिर्फ दंद–फंद और स्वार्थ के।'[16]

आत्म–मुग्धता

'अपने शहर के आत्म–मुग्ध लोग' व्यंग्य में गोपाल चतुर्वेदी ने आत्म–मुग्धता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि 'आत्म–मुग्धता, मधुमेह के समान, आज के समाज का प्रिय रोग है। आदमी खुशी–खुशी अपनी प्रशंसा की मादक मिठाई खाते हैं और उसके अतिरेक की तंद्रा में ऐसे मगन है कि उन्हें अपने भले–बुरे का होश नहीं रहता है।'[17]

अहिंसक मुल्क में बर्बर हिंसा

गोपाल चतुर्वेदी के अनुसार 'हमें लगता है कि हम उस अहिंसक मुल्क के वासी है जिसके मन में बर्बर हिंसा का वास है। नही तो कैसे संभव है कि कभी हुक्का गुड़गुड़ाती खाप मध्ययुगीन फरमान जारी करे, कभी दाढ़ी लहराते उलेमा। स्त्री–पुरूष की बराबरी के जमाने में पुलिस मौन है, नेता खामोश। नेता को खाप के वोट भी चाहिए और उलेमा के भी। चुप्पी साधना सामाजिक मर्जों की एक मुफीद दवा है।'[18]

महानगरीय जीवन में विभाजित मानव

गोपाल चतुर्वेदी का मानना है कि हर महानगर में दो बस्तियां है। एक पुल के ऊपर की चमचमाती, आकर्षक, रंगीन, बड़ी–बड़ी अट्टालिकाओं और शानदार कारों वाली। इनमें रहने वाले अधिकतर समृद्ध हैं और इनका मौसम पर नियंत्रण है। गर्मी, जाड़े, बरसात से इन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। ये खुशियों से ऊबे, थके, लोग हैं। इनकी मुस्कान, हाव–भाव, उत्साह, प्रदर्शन कुछ भी सहज, स्वाभाविक और स्वतः स्फूर्त न होकर, कभी निभाई गई भूमिका की पुनरावृत्ति है। वहीं दूसरी पुल के नीचे की अंधेरी, बदबूदार, घुटन, सीलन, सड़ांध, टूटे फर्श और खस्ताहाल दीवारों की बस्ती है, मौसम हो या उत्सव यह इसे झूमकर मनाते हैं।[19]

सामाजिक प्रतिष्ठा की बदली परिभाषा

गोपाल चतुर्वेदी के अनुसार, 'सामाजिक प्रतिष्ठा अब स्वतंत्रता सेनानी के परिवार में पैदाइश के चांस या विद्वता अथवा अच्छे लेखन से हासिल नहीं होती है, अपितु वह खरीदी जाती है। इसके पास कितना कालाधन है? कितनी कार, कितनी कोठियां है?'[20]

रिश्तों में बुनियादी परिवर्तन

सामाजिक रिश्तों की बुनियाद में होने वाले परिवर्तन को लक्ष्य करते हुए गोपाल चतुर्वेदी लिखते हैं कि 'वर्तमान में रिश्ते–नाते, विवाह,परिवार सिर्फ पारस्परिक स्वार्थ साधने के बहाने हैं। हिस्सा लेकर बेटा बाप को ठुकराता है। उसी के घर में उसी के लिए जगह नहीं है। बूढ़े–बूढ़िया, नौकर के क्वार्टर में गुजारा करें, जब तक कि घर में नौकर नहीं है। भाई–भाई के इतने सगे हैं कि बस चले तो एक–दूसरे का गला घोंट दें। वह तो कुछ हिम्मत की कमी है, कुछ कानून का डर है कि सिर्फ अन बोला–चाली है। एक–दूसरे को देखते हैं तो मुँह फेर लेते हैं।'[21]

सामाजिक सरोकारों का सिमटता दायरा

गोपाल चतुर्वेदी की मान्यता है कि 'आजकल पारिवारिक विघटन का जमाना है। न बेटा बाप का सगा है, न पत्नी पति की, न भाई भाई का। संयुक्त परिवारों के विघटन की नींव नौकरी के चक्कर में पड़ी। जो विघटन संयुक्त परिवार से प्रारम्भ हुआ, वह अब गली–मोहल्ले तक आ पहुंचा है। सरोकारों का दायरा दिन–प्रतिदिन सीमित होता जा रहा है। अतीत के दकियानूसी दिनों में कभी संयुक्त परिवार ही नहीं, मोहल्ला भी एक परिवार था। लोगों को अपने शहर से भी मोह और लगाव था और दूर–पास के रिश्तेदारों से भी। संयुक्त परिवार, मोहल्ले, शहर, देश सब जुड़े थे इस नातेदारी में। जीवन मूल्यों ने कुछ ऐसी पलटी खाई कि धन की चुंबकीय ताकत के आगे पुरखों की नैतिकता का पाठ कब का अर्थ खो चुका है।'[22]

उपर्युक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि गोपाल चतुर्वेदी अपने व्यंग्य लेखन में सामाजिक सरोकारों की सहज अभिव्यक्ति करते हैं। वे अपने समय की सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपों की सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा व्यंग्यात्मक व्याख्या करते हैं।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. *परसाई, हरिशंकर, स्दाचार का ताबीज, कैफियत, पृ–10, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, 2004*
2. *चतुर्वेदी, गोपाल, आदमी और गिद्ध, पृ–29, ज्ञान गंगा प्रकाशन, दिल्ली, 2010*
3. *चतुर्वेदी, गोपाल, निर्लज्ज समय के आसपास, पृ–177, मेघा बुक्स, दिल्ली, 2012*
4. *चतुर्वेदी, गोपाल, आदमी और गिद्ध, पृ–38, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2010,*

5. चतुर्वेदी, गोपाल, सत्तापुर के नकटे, पृ–119, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2014
6. चतुर्वेदी, गोपाल, दूध का धूला लोकतंत्र, पृ–37, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ0प्र0), 2013
7. चतुर्वेदी, गोपाल, दूध का धूला लोकतंत्र, पृ–22, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ0प्र0), 2013
8. चतुर्वेदी, गोपाल, करसीपुर का कबीर, पृ–124, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2012
9. चतुर्वेदी, गोपाल, नैतिकता की लंगड़ी दौड़, पृ–35–36, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2002
10. चतुर्वेदी, गोपाल, फार्म हाऊस के लोग, पृ–78, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2011
11. चतुर्वेदी, गोपाल, आदमी और गिद्ध,पृ–94, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2010
12. चतुर्वेदी, गोपाल, फार्म हाऊस के लोग, पृ–155, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2002
13. चतुर्वेदी, गोपाल, नैतिकता की लंगड़ी दौड़, पृ–55, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2002
14. चतुर्वेदी, गोपाल, नैतिकता की लंगड़ी दौड़, पृ–55, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2002
15. चतुर्वेदी, गोपाल, नैतिकता की लंगड़ी दौड़, पृ–55, पृ–61, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2002
16. चतुर्वेदी, गोपाल, निर्लज्ज समय के आसपास, पृ–200 मेधा बुक्स, दिल्ली, 2012
17. चतुर्वेदी, गोपाल, दूध का धूला लोकतंत्र, पृ–6, पृ–61 हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ0प्र0), 2013
18. चतुर्वेदी, गोपाल, दूध का धूला लोकतंत्र, पृ–6, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ0प्र0), 2013
19. चतुर्वेदी, गोपाल, सतापुर के नकटे, पृ–18, पृ–22 सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2014
20. चतुर्वेदी, गोपाल, सतापुर के नकटे, पृ–18, पृ–22 सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2014
21. चतुर्वेदी, गोपाल, सतापुर के नकटे, पृ–18, पृ–22 सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2014
22. चतुर्वेदी, गोपाल, करसीपुर का कबीर, पृ–150, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2010